

ISSN 2321 - 5704

भाषा भारती

राजभाषा प्रयोग की वार्षिक पत्रिका

26

अंक 5 - वर्ष 5, मार्च 2018



राजभाषा प्रकोष्ठ
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर

भाषा भारती

राजभाषा उन्नयन की वार्षिक पत्रिका

ISSN 2321 - 5704

(वर्ष-5, अंक-5, मार्च, 2018)

संरक्षक

कुलपति

प्रो. आर.पी. तिवारी

परामर्शदाता

कुलसचिव

ग्रुप कप्तान श्री विवेक दुबे (से.नि)

सम्पादक मण्डल

प्रो. ए.एन. शर्मा

डॉ. पंकज तिवारी

डॉ. ऋतु यादव

डॉ. अरविन्द कुमार

डॉ. अनुराग श्रीवास्तव

श्री आर.के. पाल

सम्पादक

डॉ. छबिल कुमार मेहेर

सहायक सम्पादक

अभिषेक सक्सेना



राजभाषा प्रकोष्ठ

डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय

सागर (मध्यप्रदेश) - 470003

दूरभाष : (07582) 265828

ई-मेल : hindicell2015@gmail.com

ओड़िया से हिन्दी अनुवाद : समस्याएँ और सम्भावनाएँ अजय कुमार पटनायक	86
साहित्यानुवाद : अनुकृति या अनुसृजन छबिल कुमार मेहेर	93
भारत में महिला सशक्तिकरण अनुपमा कौशिक	108
✓ 'पृथ्वी का प्रथम स्नान' : जीवन की वापसी का आग्रह राजेन्द्र यादव	✓ 111
रचनात्मक चिंतन की सूफी ज़मीन आशुतोष	118
हिन्दी में स्त्री-लेखन के मायने हिमांशु यादव	124
निर्मला पुतुल की कवितायें : संवेदना एवं शिल्प अरविन्द कुमार	128
वर्तमान सिनेमा : सफलता, भाषा और शीर्षक पंकज तिवारी	136
सात कविताएँ पंकज चतुर्वेदी	139
दो कविताएँ दिनेश अत्रि	141
सागर से लौटते समय कुमार कृष्ण	143
तीन कविताएँ नवीन कानगो	145
समाचार अनुराग श्रीवास्तव	149

‘पृथ्वी का प्रथम स्नान’ : जीवन की वापसी का आग्रह

— राजेन्द्र यादव

समकालीन कविता में काव्य संवेदना लगातार विस्तृत और सूक्ष्म होती जा रही है। यहाँ विस्तृत से तात्पर्य जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं, वस्तुओं, हासिये के लोगों के साथ तकनीकी सभ्यता से आक्रांत हमारे प्रकृति से टूटते, विकृत होते मनुष्य के रिश्तों का यहाँ गहरा एहसास है। समकालीन कविता भी अपने लगभग पचास वर्ष की अवधि को पार का चुकी है, इस आधी सदी के समय में लिखी गई हिन्दी कविता को आपातकाल के बाद लगातार बदलते हुए देखा जा सकता है। साठोत्तरी हिन्दी कविता के बाद हिन्दी कविता में लगातार विस्तार देखा जा सकता है। नारों, चीखों, पोस्टर से आगे हिन्दी कविता में जीवन की संवेदनशील समीक्षा आपातकाल के बाद लगातार सक्रिय रचनात्मक शिल्प का केन्द्रिय हिस्सा रही है। हिन्दी कविता के इतिहास देखे तो अतिशयोक्तिपूर्ण वीरता, आध्यात्मिक प्रेम की मानवीयता, सामाजिक बराबरी और निर्गुण सगुण के साथ राजाश्रय की प्रशंसा की बहुआयामी यात्रा करते हुए, हिन्दी कविता छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता में ढली। हिन्दी कविता के सूत्र लगातार युगीन सामाजिक, राजनैतिक संबंधों से सम्पृक्त रहे हैं। समकालीन हिन्दी कविता ने भी उसकी दीर्घ अवधि में अपने समय के उतार-चढ़ाव को गहरे स्तर पर परिभाषित करने की कोशिश की है। इस बीच समकालीन हिन्दी कविता के अनेक सार्थक कोण भी उभरे और परिपक्व भी हुए। दलित और आदिवासी हिन्दी कविता के दो समृद्ध सोपान आज हिन्दी कविता की समकालीन धारा में एक मुकम्मल पहचान के रूप में स्थापित हो चुके हैं, यह हिन्दी की समकालीन का सबसे उज्ज्वल और महत्त्वपूर्ण विस्तार है। समकालीन हिन्दी कविता वस्तुओं, रिश्तों, लोगों, पास-पड़ोस और प्रकृति की मादक, देहिक गंध से बाहर निकलकर जीवन के यथार्थ को दलित समाज की पीड़ा और अपमान के साथ तथा जनजातियों के जीवन की भयावहता और संघर्ष को अभिव्यक्त होते देखा जा सकता है। समकालीन कविता में इस युग को उत्तर समकालीन कविता युग की संज्ञा दी जा सकती है।

कविता, गीत, संगीत और आनंद का स्रोत रही है, अपने वृहत सन्दर्भ में कविता, हिन्दी साहित्य के काल विभाजन के अनुसार आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल सहित आधुनिक हिन्दी काल में भी छायावाद राष्ट्रीय और सांस्कृतिक कविता आदि लय-तान, संगीत और गायन के आनंद की अनुभूति को रसिकों के आकर्षण को विषय के साथ ढोती थी। इस तरह के गुणों से लदी कविता को ही

हिन्दी की शैशव आलोचना ने कालजयी कविता, साहित्य कहा था। मैं यहाँ केवल यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि आज हिन्दी की समकालीन कविता को यदि आप गाना चाहे तो गा सकते हैं, पर उसके लिए पुराने राग और लय काम नहीं आयेंगे। जीवन के यथार्थ की अनुभूतियाँ और संघर्ष शब्दों की रंगों से होकर जब समकालीन कविता के केनवास पर अपनी अभिव्यक्ति का सामयिक चित्र बनाती है तो वह चित्र हमारे समकालीन जीवन की तरह रंगहीन, विकृत होने के कारण किसी तरह का आनंद कैसे दे सकता है। हिन्दी कविता में सार्थकता और आनंद ढूँढने वालों को नहीं पता कि सौ वर्ष की यात्रा पूरी करने के बाद, अब हिन्दी कविता भारत की सभी भाषाओं के साथ अपनी समकालीनता को तथा उसमें अभिव्यक्त जीवन को पूरी जिम्मेदारी के साथ व्यक्त कर पा रही है। आज हिन्दी की समकालीनता और उसके जीवन की विस्तृत और यथार्थ अभिव्यक्ति की संवेदनशीलता भारतीय भाषाओं के लिए सहज अनुकरणीय बन गयी है। हिन्दी की समकालीन कविता में अनेक स्वर एक साथ ध्वनित होते देखे जा सकते हैं। प्रकृति के अंतहीन दोहन से उत्पन्न भयावहता से पृथ्वी के अस्तित्व को ही खतरा उत्पन्न हो गया है, ब्रह्माण्ड में करोड़ों पिण्डों की उपस्थिति के बावजूद तमाम आधुनिक वैज्ञानिक निष्कर्षों में आज भी जीवन सिर्फ पृथ्वी पर संभव है। ब्रह्माण्ड की इस अद्वितीयता से भरी पृथ्वी पर लगातार जीवन का संकट मनुष्य की अंतहीन आवश्यकताओं के कारण बढ़ता ही जा रहा है। प्रकृति के साथ मनुष्य के बदलते रिश्तों और सरोकारों का भी हिन्दी की समकालीन कविता में गहरा एहसास है। प्रकृति के साथ मनुष्य के संबंधों को पुनर्नवा करती कविताएँ हाल ही में प्रकाशित श्यामसुन्दर दुबे के कविता संग्रह “पृथ्वी का प्रथम स्नान” के केन्द्र में है। लगातार सुख सुविधाओं और जल्दवाजी की दौड़ में हाँफती आधुनिकता और प्रकृति से बढ़ती दूरी ने मानव जीवन को बीमार और विकृत कर दिया है। ऐसे में श्यामसुन्दर दुबे की कविताओं में प्रकृति की वापसी को जीवन की सुखद स्मृतियों के रूप में देखा जा सकता है। प्रकृति पर हो रहे हमलों और अतिक्रमण से पृथ्वी का समूचा जीवन ही खतरे में पड़ गया है। पृथ्वी पर जीवन को संभव बनाती परिस्थितियों की यात्रा इस कविता संग्रह के विषय वस्तु का सार्थक पक्ष है। तुलसी के क्षिति जल पावन गगन समीरा के संतुलित मिश्रण से बनी देह को यहाँ नया और समय सापेक्ष विस्तार दिया गया है।

‘पृथ्वी का प्रथम स्नान’ संग्रह की कविताओं को कवि ने दो खण्डों में रखा है— एक सृष्टि संभव, दूसरा दृश्य-परिदृश्य। सृष्टि संभव खण्ड को पृथ्वी, जल, आग, हवा, आकाश, देह और प्रेम उपखण्ड में भी बांटा गया है। समकालीन हिन्दी कविता में अपनी विषयवस्तु और प्राकृतिक जीवन की और लौटने के मानवीय जीवन संदर्भ को प्रकृति के उपादानों के साथ सार्थक रूप में विन्यस्त होते देखा जा सकता है। प्रकृति के जितने उपादानों से पृथ्वी पर जीवन संभव हुआ होगा आज उन सभी तत्त्वों का प्राकृतिक स्वरूप नष्ट हो चला है। मिट्टी, हवा, पानी के सभी स्रोत भयानक प्रदूषित होकर जीवन के लिए खतरा बन गये हैं। कारखानों, परमाणु, घरों के रेडियोएक्टिव कचरे को पृथ्वी के गर्भ में गहरे दबाया जा रहा है। विश्व के अनेक तथा कुछ भारत के भी शहर सांस लेने लायक नहीं बचे हैं। ऐसे में सृष्टि संभव खण्ड में प्रकृति की और वापसी का मानवीय आग्रह करती यह कविताएँ समकालीन हिन्दी

कविता संसार में अपना नया मुहावरा प्रस्तावित करती है। पृथ्वी के जन्म को 'गुस्सैल स्त्री' कविता में नये रूप में व्यक्त होते देखा जा सकता है—

एक गुस्सैल स्त्री नहाती रही।

लावा की नदियों में वर्षों तक आग-आग होती रही।

पृथ्वी की ब्रह्माण्ड में उत्पत्ति की वैज्ञानिकता को व्याख्यात्मक मानवीय रूपक में नये अर्थ में रचा गया है। प्रकृति के तमाम उपादान नदियाँ, वर्षा, पहाड़, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, बादल, ओस, प्रेम, करुणा, मानवीय जीवन एक भरी-पूरी महाकाव्यात्मता जैसी पृथ्वी पर उपजी थी, जीवंत थी आज मनुष्य की अंतहीन उपभोग की प्रवृत्ति से पृथ्वी का प्राकृतिक परिवेश जहरीला होने लगा है। समुद्र, नदियाँ, वर्षा, झीलें दूषित और मृत होने लगी हैं। आज विश्व की अनेक नदियाँ जहरीली हो गयी हैं, यह कैसे हुआ? किसने किया? यह सब मनुष्य की देन है, जिसकी गति नहीं रुकी तो पृथ्वी पर न केवल मनुष्य सभी जीवों का भयावह अंत होना तय है। इस संसार की सर्वोत्तम कविता पृथ्वी का प्राकृतिक परिवेश है, इसी बात को संग्रह की पहली कविता में कवि श्यामसुन्दर दुबे ने सार्थक अभिव्यक्ति दी है। पृथ्वी की इस असंख्य ब्रह्माण्ड में अद्वितीयता सर्वज्ञ है, और उसी की मानवीय व्यापकता में लता मंगेशकर को भी शामिल किया गया है। धरती का पता, धरती की सुख-नींद, धरती दिया-बाती है, कविताओं में धरती के जन्म से लेकर आज के अनुभवों, विपत्तियों और सृजन को कवि ने प्रभावी रूप में अभिव्यक्त किया है। सृष्टि संभव खण्ड की जल सीरीज कविताओं में 'जल में कुंभ' कविता अशोक वाजपेयी की लंबी कविता 'शताब्दी के अंत की कगार पर' में 'कुम्हार' की याद दिलाती है। यहाँ एक बात स्पष्ट है कि अशोक वाजपेयी का कुम्हार हमारा रोजमर्रा का कुम्हार है, पर श्यामसुन्दर दुबे की कविता का कुम्हार हमारे रोजमर्रा के वर्तन बनाने वाले कुम्हार से भिन्न कोई महाकुम्हार है, जिसे कविता अपनी भाषा में मानवीय धरातल से भिन्न कहीं उद्भव लोक में होने की बात करती है, पर कविता यहां टुकड़ों में बिखर जाती है, कोई सार्थक समकालीन चित्र ब्रह्माण्ड के कुम्हार का दुबे बना नहीं पाते। कविता को ज्यादा विस्तार से भरने की कवि की जिद को कविता में बिखरते देखा जा सकता है।

यहाँ यह स्पष्ट करना जरूरी है कि कविता पर उसके 'प्रेम' (खांचे) से अधिक भार डालना, कविता को असाधारण बनाने की कोशिश करने से कविता के प्रवाह की भावात्मक गति और लय टूट जाती है, जिससे कविता विवरण की मानसिकता का शिकार हो जाती है। विषय चाहे जो हो समकालीन कविता की लोकप्रियता और सार्थकता उसके भारी भरकम केनवास से नहीं उसके समकालीन जीवन और भावात्मक आंतरिक लय से है। कुछ कड़वी बातें भी यहाँ आ जाय तो आ जाय पर मुझे अपनी बात रखने से गुरेज नहीं। जैसे समकालीन कविता में कवि जब मध्यकालीन प्रतीक इस्तेमाल करता है, तो उसे कविता की मूल भाषा और विषय वस्तु में पिरोना भी आना चाहिए, पर अमूमन ऐसा हो नहीं पाता। मसलन कबीर के, तुलसी के काव्य, आध्यात्म और जीवन में प्रकृति के प्रतीकों का समकालीन कविता में पिछले साठ वर्षों से प्रयोग किया जा रहा है। पर बहुत कम कवि समकालीन कविता में तुलसी के पंच तत्व और उसकी देहिक सृष्टि को अपनी भाषा, शब्द, भाव और लय के साथ सार्थकता में रच पाये हैं, ज्यादातर ने अपने व्याख्यात्मक क्षितिज को परम्परागत

24

अनावश्यक विस्तार देने या कविता के समय को युगों के आर-पार पहुँचाने के लिए ही प्रयोग किया है। बड़ी विनम्रता से यहाँ मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि कबीर की चदरिया और कुम्हार के चाक को अनावश्यक घुमाने में तथा प्रकृति, मिट्टी, हवाएँ, आकाश, सूरज को कवि ने मानवीय बनाने की जो कोशिश की है, वह कविता की भाषा के हाथ से कहीं छूट गयी है। यहाँ समकालीन जीवन, मनुष्य के दबाव के साथ प्रकृति के उपदानों की अभिव्यक्ति का संतुलन या तालमेल कविता से छूटता दिखायी देता है। यहाँ ऐसा लगता है कि मानों प्रकृति के साथ मनुष्य की दुनिया को उसकी भाषा में उपक्रम करके रचा गया है।

कविता श्यामसुन्दर दुबे के यहाँ सृष्टि खण्ड में कविता से कहानी और वह भी सुनी-सुनायी होने की निराशा से भर जाती है। कविता के फारमेट में विवरण और सुनी कहानी को कवि भाषा के आकर्षण से वैसा नहीं भर पाया है, जैसा समकालीन कविता सृष्टि की गाथा सुनाते हुए, अपने समकालीन मनुष्य के दबावों और तनावों को व्यक्त कर सकती थी, पर श्यामसुन्दर दुबे जी के काव्य संग्रह में कविता अपने समकालीन मनुष्य को छोड़कर सृष्टि के जन्म के गीत गाने लगती है। जल में कुम्भ, पानी में थी प्यास, पानी की लय न टूटने पाए, बर्फ से पूछना पानी का पता, पानी की अंतरंगता आदि कविताओं में पानी के, जीवन के, मनुष्य के साथ रिश्ते को जीवन के प्रारंभ से लेकर आज तक ये संदर्भ में सार्थक रूप में व्यक्त किया गया है, पर यहाँ भी शब्दों पर युगों का भार अनावश्यक प्रतीत होता है। इन कविताओं का सबसे दुर्बल पक्ष है भाषा कौशल के साथ आकर्षण की लय यहाँ थोड़ी कमजोर होने से कविता अपनी ओर खींच नहीं पाती। पर यहाँ कविता में पानी, त्याग, शक्ति, लोकगीत, काम वासना, सम्मान, नये पत्ते, वर्फ, नृत्य, गीत, संगीत, समूचे मानवीय जीवन में पानी के खजुराहों होने तथा जीवन के प्रत्येक पक्ष का पानी से प्रभावित होना जल खण्ड की कविताओं की केन्द्रिय अभिव्यक्ति है। आग-उपखण्ड की कविताओं में मनुष्य के आग के साथ सम्बन्ध को समकालीन कविता में यहाँ चन्द्रकांत देवताले से आगे का जरूरी विस्तार दिया गया है। 'आग हर चीज में बतायी गई थी' चन्द्रकांत देवताले के काव्य संग्रह को श्यामसुन्दर दुबे के यहां नये रूप में पुनर्नवा होते देखा जा सकता है। आग का प्रेमगीत यहाँ अपनी पूरी आदिम आभा के साथ समकालीनता के तनाव को भी ईमानदारी से व्यक्त करता है। यहाँ श्यामसुन्दर दुबे ने प्राचीन का समकालीन जीवन से जीवंत रिश्ता बनाया है-

आग बुझती नहीं वह चलती है चीजों के आर-पार

चीजों के रूप-रंग को बदलती

जो जैसा है- वैसा नहीं रह जाता

आग जब उसके भीतर से गुजरती है।

आग: का प्रेमगीत, आग: जीवन की उजास, आग: जो जलाती है, सब कछ, आग बहुत जजबाती, आरी सी आग, आदि कविताओं में आग का मनुष्य जीवन के साथ आदिम संबंधों सहित आग के प्रतीकों के प्राचीन से लेकर आधुनिक रूपों को मानवीय जीवन के साथ गहरे अर्थों में अभिव्यक्त किया गया है। जहाँ एक तरफ चूल्हे से लेकर मन की आग है, तन की आग है और पेट की

(114)

आग से लेकर चिता की आग को कवि ने भाषा के केनवास में नये रूप और अर्थ में व्यक्त किया गया है। संग्रह में सृष्टि खण्ड के तीसरे उपखण्ड 'हवा' में जीवन की आधुनिकता को जीवन के आदिम रूप के साथ मानवीय बनाया गया है। यहाँ शब्द भाषा, प्रतीक और समय सब जैसे मिले हुए हैं, गुँथे हुए हैं, हवा से उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। हवा में उड़ती रंग-बिरंगी तितली और हवा में उड़ते फुगों के साथ बहुत ऊपर उड़ रहे हवाई जहाज सब हवा के पास, हवा के साथ हवा के दायरे में हैं। फेफड़ों और ट्रक के टायरों का हवा से गहरा रिश्ता नया नहीं है। पहिये के घूमने से, चिमनियों के धुआँ तक 'अज्ञेय' से श्यामसुन्दर दुबे तक लगातार में हिन्दी कविता में हवा को लेकर बदलती हुई समय सापेक्ष काव्य चेतना देखी जा सकती है।

'आकाश' उपखण्ड की कविताओं में आकाश की अनंतता को 'बचता है केवल शून्य' कविता में जीवन की अंतहीन प्रतीक्षा के माध्यम से हिन्दी की समकालीन कविता में अपना थोड़ा सा आकाश बुना है। सबके अपने-अपने आकाश होते ही हैं, पर इस अपने-अपने आकाश के साथ ही एक सांझा आकाश भी होता है, जिसमें सभी के चेहरे, ध्वनियाँ, खुशियाँ सदन और जीवन का समय बीतता है, दर्ज होता है, वह आकाश यहाँ कविता के संवाद में संभव होते हुए देखा जा सकता है। 'देह' उपखण्ड की अग्नि संभवा, देहफूल, अचरज भरी देह, देह बड़ी प्यारी है, कविताओं में देह के आदिम स्वरूप को साहित्य में देह के विस्तृत प्रतीकों को भी यहाँ कविता में सार्थक अभिव्यक्ति दी गई है। देह की अनेक अनेक जरूरतें, सच्चाईयाँ और भूखें हैं, जिन्हें यहाँ हिन्दी की समकालीन कविता में अन्यो से भिन्न एवं खुले रूप में कलात्मकता की लय और शब्दों में गद्य की समानान्तर शैली में प्रभावी रूप में अभिव्यक्त किया गया है। देह के जितने भी साहित्य और काव्य रूप हो सकते हैं, हुए हैं, उन्हें कविता में उनके मूल से भिन्न और वाजिब स्वरूप में नये तरह से अभिव्यक्ति मिली है। 'देह बड़ी प्यारी है' कविता में देह की गंध, घृणा, प्रेम, छाया, माया, रोटी, चिन्हारी, बोटी, आरी, के मध्यकालीन प्रतीकों को कवि ने यहाँ समकालीन बना लिया है। यहाँ सचमुच देह की प्राचीन घिसी पिटी संज्ञाओं को कविता की भाषा में नये रूप में ढलते अभिव्यक्त होते देखा जा सकता है।

कविता कवि के हाथों का ऐसा औजार है, जिसे वह अपनी प्रतिभा और कौशल से कलात्मक सार्थक बनाता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि रचनाकार अपने समय के तनावों से किसी भी सूरत में बचकर नहीं निकल पाता है, समय की वृहत चेतना के पार कविता अपना मौलिक संसार रचने की कोशिश करती है, पर वह अपने समय की सामूहिक मनःस्थिति से बचकर नहीं निकल पाती, निकलना भी नहीं चाहिए, यदि कविता मनुष्य के लिए है, तो उसे अपने समकालीन जीवन के तनावों से बचकर क्षितिज के पार जाने की इजाजत तभी है, जब वह इस जीवन में रहते सहते हुए सपना देखे। समकालीन कविता की केन्द्रीय काव्य चेतना में प्रकृति के साथ मनुष्य के टूटते-छीजते संबंधों को लगातार पुरजोर तरीके में उठाया गया है। समकालीन मनुष्य के जीवन की यांत्रिकता ने उसके रिश्तों के लचीलेपन को कठोर बना दिया है जिससे जीवन भयावह होता जा रहा है। प्रकृति से मनुष्य का अलगाव अब जीवन में स्पष्ट नजर आने लगा है। 'यूज एण्ड थ्रो' जीवन की संस्कृति ने जीवन और रिश्तों को भी अपने में समेट लिया है, नतीजतन जीवन को इस संस्कृति ने भीड़ में अकेला कर दिया है,

24

डिप्रेषन, तनाव, अकेलापन आज आत्महत्या का कारण बन रहे हैं। भारतीय संस्कृति जो कभी वसुधैव कुटुम्बकम् का दम भरती थी, आज पश्चिम के भोगवादी यांत्रिक जीवन की अनुगामी हो गयी है और भारतीय संस्कृति दूर कहीं पीछे छूट गयी है। जहाँ से हम अब लौट नहीं सकते, हम इतने दूर निकल आये हैं कि वापसी के सारे रास्ते समाप्त हो चुके हैं। पहले हमारे घरों का, जीवन की जरूरतों का सामान बदला, जरूरतें बदली, फिर पता ही नहीं चला कब हम और हमारे रिश्तों की गर्माहट भी जाती रही। श्यामसुन्दर दुबे के काव्य संग्रह 'पृथ्वी का प्रथम स्नान' भी कविताओं में बड़ी जिम्मेदारी के साथ प्रकृति और मनुष्य के संबंध को पुनः परिभाषित किया गया है। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' कविता में 'कबीर' को पूरी जिम्मेदारी के साथ कविता में स्मरण किया गया है तथा यहाँ कविता में देह के मध्यकालीन निष्कर्ष के साथ आधुनिक जीवन के तनाव को सार्थकता और सावधानी से व्यक्त किया गया है। जैसे—

तुम देह को छोड़ो, अपनी ही देह को

कभी परायी देह की तरह, तो देह लगेगी एक ओढ़ी हुई चादर।

देह की जिस चादर को मध्यकाल में 'कबीर' ने ओढ़ना सीखया था और समकालीन कविता के अनेक कवियों ने कबीर की निरगुनियों चादर को अपने-अपने काव्य कौशल और काव्य-प्रतिभा से कविता में जगह दी है। इस अर्थ में श्यामसुन्दर दुबे 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' कविता के कथ्य और शिल्प दोनों स्तर पर समकालीन कविता में अपने दम पर शामिल होते हैं और भाषा, शब्द तथा काव्य लक्ष्य सभी स्तर पर सफल भी। देह की सुगंध, घृणा और नश्वरता सभी स्तर पर कवि प्राचीन और आधुनिक काव्य प्रतीकों का सार्थक प्रयोग करने में सफल हुआ है। देह और जीवन के परत-दर-परत यहाँ रिश्ते को फिर से जोड़ने की मानवीय कोशिश की गई है। देह के अनेक रंगों के उजास को कविता में जीवन के लिए जरूरी प्यास के रूप में व्यक्त किया गया है।

'प्रेम' उपखण्ड में प्रेम के वैश्विक स्वरूप को प्रकृति साथ पृथ्वी के मूल स्वभाव में दर्शाया गया है। प्रेम के बिना पृथ्वी संभव नहीं है, नक्षत्र संभव नहीं हैं, सूरज, चाँद, तारे, और सबसे महत्वपूर्ण जीवन संभव नहीं हो सकता। प्रेम को 'सूफी' भक्ति में तब भी संभव माना गया है, जब इस ब्रह्माण्ड में कुछ नहीं था तब भी प्रेम था। प्रेम ईश्वर का रूप है, उसकी वास्तविक मौजूदगी है। यहाँ भी कविता में उसी प्रेम को नये अर्थ में विन्यस्त किया गया है, जहाँ समकालीन जीवन लगातार प्रेम से बाहर कृत्रिमता में कैद होने को है। शारीरिक सुख के आगे आज प्रेम को भी निराश, उदास और हारा हुआ देखा जा सकता है। प्रेम के परम्परागत स्वरूप और अर्थ को कविता में नये अर्थ के साथ विस्तार दिया गया है। इस उपखण्ड की 'एक मात्र आदिम प्यास' 'ज्यों-ज्यों डूबे श्याम रंग', 'अगर कहीं पर मिले तुम्हें वह', इस सूचना भरे समय में, आदि कविताओं में प्रेम के भारतीय भाषाई प्रतीकों को नये अर्थ और नयी सार्थकता से व्यक्त किया गया है। प्रेम कम क्यों होता जा रहा है? जबकि प्रेम की सारी दूरियों को यांत्रिकता ने आज खत्म कर दिया है, सारी दुनिया के लोग हमारी मुट्ठी में हैं, अब मध्यकालीन गोपियों के लिए किसी ऊधो के संदेश वाहक की जरूरत नहीं। सूचना और इन्टरनेट के 'फ्री टू एयर' ने सारी दुनिया जेब में ला दी है। पर फिर भी प्रेम लगातार घट रहा है, रिश्ते मर रहे हैं, ऐसा क्यों? ऐसा

इसलिए कि प्रेम किसी यंत्र की जद में नहीं, मानवीयता और प्रेम किसी यंत्र से सुलभ नहीं हो सकते, इसे भाव, हृदय और अनुभूति से पाया जा सकता है। प्रेम आज भी एक अबूझ पहेली है, जिसे 'सूफियों' के अलावा कोई सुलझा नहीं पाया। 'इश्क हकीकी और इश्क मिजाजी' को सूफी संतों ने त्याग तपस्या से हासिल किया। आज यांत्रिकता से भरे मानव जीवन के पास चिंतन, मनन का कोई समय ही नहीं है। सब उसके पास हैं, वह सबके पास है फिर कैसी जरूरत और किसी जरूरत। कभी ईश्वर के अंत की घोषणा की गई थी, पर वह कितनी सच थी, क्योंकि जो था ही नहीं उसके मरने की घोषणा कैसी, पर प्रेम था और सूचना क्रांति के हमलों से मानव जीवन के भीतर प्रेम की मौत हो गयी है, जीवन की कभी ना खत्म होने वाली रेस में दौड़ रही मानव सभ्यता के हाथ से मानवीयता के सारे औजार एक-एक कर छूटते जा रहे हैं और अब प्रेम भी हमारे जीवन से इस तकनीकी क्रांति ने छीन लिया है। अब हमारा कोई नहीं, हमें किसी से प्रेम नहीं, हमें सिर्फ भूख है, भूख की जरूरत को यांत्रिकता प्रेम के नाम से परोस रही है।

संग्रह की 'इस सूचना भरे समय में' शीर्षक कविता में आधुनिक जीवन की सार्थक चिंता की गई है। यह कविता कम हमारे समय के मनुष्य की ग्लोबल व्याख्या है। यहाँ उल्लेखनीय है कि तकनीकी और सूचना क्रांति के उपकरणों ने एक बड़ा साहित्यिक काम कर दिया है कि विश्व की सभी भाषाओं में साहित्यिक समय अब एक साथ बदलने लगा। सभी क्षेत्रीय संस्कृतियों, सभ्यताओं और भाषा के ऊपर एक ग्लोबल संस्कृति पनप चुकी है जिसके सरोकार क्षेत्र, भाषा और भूगोल के दायरों के पार एक जैसे हैं। ग्लोबल सिनेमा, ग्लोबल न्यूज, ग्लोबल सूचनाएँ, ग्लोबल सेक्स, ग्लोबल अपराध, ग्लोबल आतंक सब क्षेत्र और भाषाओं की तहों के पार हैं। हमारा समय ग्लोबल संस्कृति में सांस लेने, जीने की मजबूरी का समय है। और यदि उत्तर कोरिया, दक्षिण कोरिया, या भारत पाकिस्तान से युद्ध हुआ तो तीसरा विश्व युद्ध इन्हीं दोनों कारणों से होगा। तीसरे विश्वयुद्ध में क्या होगा पृथ्वी पर जीवन बचेगा की नहीं, यह सब समय बतायेगा पर इतना तय है कि तीसरे विश्वयुद्ध में परमाणु बमों, मिसाइलों के इस्तेमाल से समूची मानव को अपने अस्तित्व के संकट से सामना करना पड़ेगा। कविता संग्रह के द्वितीय खण्ड दृश्य परिदृश्य खण्ड की कविताओं में जीवन, मौत, भीड़, नदी, कुंभ के साथ 'इस शहर में एक प्याउ थी' जैसी कविताओं का संग्रह है, जो हमें हमारी मानवीय स्मृतियों की ओर वापसी का विनम्र आग्रह करती हैं। सूरज मछुआरा, कविता के लिए थोड़ी सी जगह, बरसात में किला, शहर, पेड़ की हुरमत, फोटू बचे रहेंगे, आँख में हिलगा आँसू, पूरा घर कविता, बसंत आया, अग्नि संस्कार, ऋतु कृपा, भारत भवन को देखते हुए शहर में ट्रेक्टर, इच्छा मृत्यु के विरुद्ध आदि संग्रह के दूसरे खण्ड की कविताओं में जीवन से बेदखल हो चुके और लगातार बेदखल हो रहे जीवन की स्मृतियों, घटनाओं और लोगों की कविता में, जीवन में, वापसी के लिए खोली गई खिड़कियाँ हैं। जिनसे होकर हमसे हमारी बहुमूल्य धरोहर को हमारे जीवन से छूटते-बिखरते हुए देखा जा सकता है।

24

असिस्टेंट प्रोफेसर

हिन्दी विभाग

डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

भाषा भारती / 117